



ISSN Print: 2394-7500
 ISSN Online: 2394-5869
 Impact Factor: 5.2
 IJAR 2016; 2(1): 528-530
 www.allresearchjournal.com
 Received: 28-11-2015
 Accepted: 29-12-2015

नरेश कुमार

गांव अरनियां वाली, जिला
 -सिरसा हरियाणा।

जैनेन्द्र कुमार के साहित्य में विचार तत्त्व की प्रयोजनीयता

नरेश कुमार

प्रस्तावना

जैनेन्द्र कुमार प्रयोजन और उपयोगिता को प्राथमिक महत्त्व नहीं देते। “साहित्य को, कला को, धर्म को, ईश्वर को और सबको प्रयोजन में जानने की चेष्टा निष्फल है। यह नहीं कि वे निष्प्रयोजन है पर आशय यह कि उन सत्यों की सचाई प्रयोजनातीत है।”¹ विश्व को प्रयोजन की माप से मापकर सत्य को पाना संभव नहीं। इसी चिंतन के कारण जीवन में उपयोगितान्वेषियों के प्रति अपने आक्रोश को प्रकट करते हुए जैनेन्द्र लिखते हैं, “दिल्ली नगर में बच्चों के लिए दूध की जरूरत है और सावन में ये बादल फिर भी पानी ही बरसाते हैं। आकाश सूना खड़ा है, क्यों नहीं गुच्छे-के-गुच्छे अंगूर टपका देता है। हमें जरूरत अंगूरों की है और आकाश निरूपयोगी भाव से बेहयाई के साथ कोरा-का-कोरा खड़ा है। ये बादल और आसमान दोनों निकम्मे हैं। उनसे कोई वास्ता मत रखो। हमको पैसे की सख्त जरूरत है, रोटी की बेहद भूख है। और इन सब चीजों से न रोटी मिलती है न कौड़ी हाथ आती है। वे अनुपयोगी हैं। मत देखो उनकी तरफ। इनकार कर दो उन्हें। उनसे समाज का क्या लाभ? तो ऐसी पुकार, कहना होगा कि, निरी बौखलाहट है। वह उपयोगिता की भयंकर अनुपयोगिता है।”² जीवन में उपयोगिता के प्रति ऐसे दृष्टिकोण वाले जैनेन्द्र कला के संदर्भ में भी इससे भिन्न नहीं है, “मस्तिष्क उसका उद्देश्य ढूंढने और पकड़ने में ही उलझा जाता है, उधर व्यक्ति को कुछ क्षण की तन्यमता-एक आनंद, रस, एक शक्ति, एक प्रकार की आत्मानुभूति प्राप्त हो चुकी होती है। जो तीर की तरह अंत तक जा लगे, बुद्धि के पटल और जाल को भेद कर मर्म में घुस जाये, और हलचल उपस्थित कर दे, वह-विद्वान चाहे कितना ही उसे पहली कहें, विद्वत्ता उसका मतलब समझने में कितनी ही अकृत-कार्य रहे और वहां उद्देश्य का कितना ही अभाव दीखे-वह सच्ची चीज है, उपादेय है, और वह जीने और जिलाने के लिए आयी है। वह कला है। अर्थ अर्थी जगत् अपनी उद्देश्य पूर्णता की परिभाषा के घेरे में उसकी उपयोगिता को न बांध पाये, इसमें अचरज नहीं। प्रत्युत यह तो बिलकुल स्वाभाविक और सम्भवनीय है। पर इससे जगत् को चिढ़ाना न चाहिए, न हटात् उस कला को निर्वासित और संकुचित करने की कोशिश करनी चाहिए। इससे उसकी उपयोगिता न कम वेगवती होती है, न कम मूल्यवती, और न ही कम आदरणीय।”³

इन उक्तियों के आधार पर यह धारणा बना लेना भ्रामक होगा कि जैनेन्द्र के लेखन के पीछे कोई निश्चित प्रयोजन नहीं है; तथा उससे किसी विशिष्ट जीवन-दर्शन, जीवन के मानक तत्त्वों, युग-बोध अथवा युग-धर्म की आशा नहीं की जा सकती। जैनेन्द्र की अनेक ऐसी उक्तियां उपलब्ध होती हैं जो सर्वथा भिन्न विचारधारा को सामने लाती हैं।⁴ जैनेन्द्र के प्रथम उपन्यास ‘परख’ के ‘लेखक के कुछ शब्द’ की प्रस्तुत पंक्तियां इस तथ्य पर प्रकाश डालती हैं: “वह उपन्यास किसी काम का नहीं जो इतिहास की तरह घटनाओं का बखान कर जाता है काम से मतलब; वह दुनिया को आगे बढ़ाने और बढ़ने में जरा मदद नहीं देता क्योंकि न वह इतिहास होता है, न उपन्यास ही।” इसी सन्दर्भ के आगे बढ़ते हुए जैनेन्द्र अपने मन्तव्य को और स्पष्ट करते हैं-“उपन्यास का काम है, कुछ आगे की- भविष्य की सम्भावनाओं की जरा झांकी दिखाना और जो कुछ अब है, उसकी तह हमारे सामने खोलकर रख देना। उपन्यास एक नये अजीब ही ढंग से रंगे और उपादेय जीवन का चित्र हमारे सामने रखता है। जीवन के साधारण कृत्य और उलझी गुत्थियों को सुलझाकर और खोल खोलकर रख देना। उपन्यास, इस तरह, सत्य में स्वप्न की पुट देकर वास्तव में कल्पना मिलाकर, व्यवहार से आदर्श का साम्य और सामंजस्य स्थापित कर और वर्तमान पर भविष्य का रंग चढ़ाकर जीवन का वह रूप पेश करता है जो जीवन से मिलता-जुलता है, फिर भी अनोखा है, जिससे

Correspondence

नरेश कुमार

गांव अरनियां वाली, जिला
 -सिरसा हरियाणा।

मनोरंजन भी प्राप्त होता है और शिक्षा भी और जिससे हटात एक नयी चीज़ हृदय में पैठ जाती है और हम जरा आगे बढ़ जाते हैं”

ऐसी परस्पर-विरोधी उक्तियां किसी निष्कर्ष पर सहज ही नहीं पहुंचा सकतीं। उपन्यास की उपर्युक्त व्याख्या देने वाला उपन्यासकार स्वयं ही अन्यत्र स्पष्ट कह देता है, “मेरा काम बताना नहीं है। लेखक का यह काम होता भी नहीं है। उपदेशक दुसरे जन होते हैं। वे पुरुष अधिक गंभीर और समर्थ होते हैं। लेखक असमर्थ होता है, या कि होना चाहिए। असमर्थ का आशय कि नेतृत्व नहीं ले सकता। वह चलाता नहीं है, मानो चलना चाहता है। साधु के भी साथ, दुष्ट के भी साथ। कोई उसका अपना अलग मार्ग नहीं है कि सच्चा मानने की वजह से उस पर सबको चलाना चाहे। . . . नहीं लेखक वह प्राणी नहीं है। मैं तो हूं ही नहीं।”⁴

जैनेन्द्र अपने सृजन का प्रयोजन लोक-हित न मानकर ‘स्वांतः सुख’ को ही स्वीकार करते हैं तथा पाठक के लिए ‘शिक्षण’ अथवा ‘उपदेश’ के दायित्व से उसे मुक्त कर देते हैं, किन्तु साहित्य को निष्प्रयोजन मानने का आग्रह उनका नहीं है। ‘कला कला के लिए’ अथवा ‘कला जीवन के लिए’- इन दो वादों में से किसी एक वाद विशेष का पक्ष न लेकर वे ‘कला ईश्वर के लिए’ की स्थापना करते हैं। कला का उद्देश्य आत्माभिव्यक्ति मानते हुए वह यह भी स्पष्ट करते हैं कि कलाकार का लक्ष्य ईश्वर अर्थात् सत्य की प्रतिष्ठा करना है। सत्य की प्रतिष्ठा के लिए साहित्य-सृजन करने वाला साहित्यकार अपने प्रति सच्चा रहकर जब साहित्य सृजन करता है तो उसका साहित्य स्वयं ही लोकमंगल की भावना से संलग्न हो जाता है।

जैनेन्द्र की उपर्युक्त मान्यताओं के आलोक में स्पष्ट हो जाता है कि वह साहित्य को निष्प्रयोजन नहीं मानते। इसी कारण परम्परा से चली आयी रसवादी दृष्टि उन्हें इष्ट नहीं है। ‘विचार’ से स्वतंत्र भावानुभूति किसी साहित्यिक कृति को श्रेष्ठ नहीं बना सकती। रसमय साहित्य को विचार ही अर्थ-गरिमा से मंडित करता है। इस दृष्टि से समस्त सृजन के मूल में चिंतन का महत्व जैनेन्द्र भी स्वीकार करते हैं।

जैनेन्द्र का साहित्य, साहित्य में चिंतन अथवा विचार के महत्व को प्रतिपादित करने का अत्यंत स्पष्ट उदाहरण है। उनका कथा-साहित्य विचार-प्रतिपादन के लिए रचा गया है। पाठक पर भी उसका प्रभाव विचारोत्तेजन का ही होता है। उनके सभी उपन्यासों तथा कहानियों में प्रमुख लक्ष्य विचार विशेष का संप्रेषण है। कथा इस प्रकार बुनी जाती है, पात्र इस प्रकार निर्मित होते हैं कि विचार पाठक तक प्रत्यक्ष रूप में प्रेषित हों। कथा साहित्य के अतिरिक्त निबंधों एवं प्रश्नोत्तर ग्रंथों के माध्यम से भी वे अपने विचारों को ही अभिव्यक्ति देते हैं, जहां वह सीधे पाठक तक अपनी बात पहुंचा सकें; बीच में कथा अथवा पात्रों तक का व्यवधान न हो।

जैनेन्द्र के यह विचार एक और तो उन्हें हिंदी के अन्य कथा-लेखकों से भिन्न चिंतक-सर्जक की कोटि में प्रतिष्ठित करती है, किंतु दूसरी ओर आलोचकों को यह विचारकता ही उनके सर्जक को भारी क्षति पहुंचाती प्रतीत है।⁵ इस विचारकता के कारण जैनेन्द्र हिन्दी साहित्य में चिन्तक के रूप में भी जाने जाते हैं तथा अनेक आलोचक उनके इस रूप को कथाकार से अधिक महत्त्व देते हैं।⁶

जैनेन्द्र ने अपनी रचनाओं के सृजन के सम्बन्ध में विस्तार से लिखते हुए बताया है कि उनकी रचनाएं उनके चिंतन, आंतरिक मंथन में से उदित होती है। उनकी रचनाओं का आरम्भ किसी एक विचार से होता है जिसको वे अपने अनुभव एवं कल्पना के आधार पर साकार करते हैं। जीवन

के प्रति दृष्टि भी जैनेन्द्र तत्त्व-मंथन से ही प्राप्त करते हैं, प्रत्यक्ष अनुभव से नहीं। विचार-बीज से रचना के उदय की अनेक घटनाएं जैनेन्द्र जी ने अपने संस्मरणों में वर्णित की हैं। इन संस्मरणों से स्पष्ट है कि उनकी रचनाओं का उदय ही नहीं, उनमें प्राण-प्रतिष्ठा का कार्य भी उनका वैचारिक मंथन करता है।

उनके विचार-साहित्य की सृजन-प्रक्रिया भी पर्याप्त विशिष्ट है। वे अपने रचनाकाल के आरम्भ से ही प्रश्नकर्ताओं की खोज में रहे हैं। वे प्रश्नों को, चाहे वे उनके अपने मन से उठें या बाहर प्रश्नकर्ता की ओर से आएँ, टालते नहीं; वरन् उन्हें सहर्ष आमंत्रण देते हैं। प्रश्नों के सहारे वे अपनी दृष्टि और अनुभूति का मंथन करने उन प्रश्नों के उत्तर देते हैं। प्रश्नों से उलझने में जैनेन्द्र को वास्तविक आनन्द की प्राप्ति होती है। तात्त्विक चर्चा में उलझने को वे विशेष उत्कंटित रहते हैं। उनके व्यक्तित्व एवं स्वभाव की इन्हीं विशेषताओं उन्हें चिन्तक का ऐसा पद प्राप्त हुआ है जिसके आसन पर बैठकर वे जीवन और जगत के विभिन्न क्षेत्रों के प्रश्नों के उत्तर देते आचार्य-से प्रतीत होते हैं। किन्तु यहां यह स्पष्ट कर लेना अत्यंत आवश्यक है कि चिन्तन की इस प्रवृत्ति के कारण उन्हें साहित्येतर क्षेत्र का व्यक्ति मान लेना भूल होगी। जैनेन्द्र कुमार के व्यक्तित्व, साहित्य, चिंतन एवं शैली की अपनी एक विशिष्ट पद्धति है। डॉ. हरिवंशराय बच्चन ने जैनेन्द्र के चिंतन की इस विशिष्टता को जैनेन्द्रत्व की संज्ञा दी है।⁷ इस संज्ञा से जैनेन्द्र की मौलिकता का स्वरूप पर्याप्त स्पष्ट ‘मौलिकता’ से तात्पर्य विचारों की अभूतपूर्वता नहीं है। जैनेन्द्र उन सत्यों की प्रेरणा से लिखते हैं; जिनका साक्षात्कार उन्होंने अपनी बुद्धि से नहीं, अन्तर के गहनतम में किया है।⁸ स्वयं जैनेन्द्र का इस बात पर पर्याप्त बल है, “इस अहिंसा के धर्म में मेरी निष्ठा है। सचमुच वह ग्रंथों में से मुझे प्राप्त नहीं हुआ। जीवन में जो असफलताएं, संघर्ष, हीनताएं झेली, उन्हीं में से यह दर्शन फट निकला है।”⁹ जैनेन्द्र की ऐसी अनेक उक्तियों के कारण वे दार्शनिक कम, कलाकार ही अधिक प्रतीत होते हैं।¹⁰ जैनेन्द्र ने अपने संस्मरणों में स्पष्ट किया है कि वे स्वयं समाधान प्राप्त करने तथ पाठक को अपने साथ ले जाने के लिए तार्किक तत्व चिन्तन की अपेक्षा अपनी आंतरिक प्रतिध्वनि को अभिव्यक्ति देते हैं, “मेरा दुर्भाग्य कि मैं विद्वान नहीं हूं। पर आज तो मैं उसे सद्भाग्य मानता हूं। गीता की अहिंसा में और महावीर की अहिंसा में और बुद्ध की अहिंसा में और गांधी की अहिंसा में क्या तारतम्य और क्या उनमें सूक्ष्म भेद है? यह विषय मुझ जैसे अबोध की पात्रता से बाहर है। यह मेरा सौभाग्य नहीं तो क्या है? नहीं तो इस सूक्ष्म-चर्चा में गिरकर मुझे क्या कभी उसका किनारा मिलता? अपने से दूर जाकर मैं कुछ नहीं पकड़ पाता। जिसकी प्रतिध्वनि मेरे भीतर नहीं है ऐसा कुछ तत्व हो तो उसकी उधेड़-बुन में किस आधार पर पड़ जाऊँ?”¹¹ गांधी अथवा जैन दर्शन का ही नहीं, जैनेन्द्र अपने चिन्तन पर किसी भी प्रथित चिन्तन का प्रभाव स्वीकार नहीं करते। सामान्यतः उनके विचारों पर जिनका प्रभाव माना जाता है, उस फ़ायड़ को काफ़ी मैं जानता नहीं। जितना जानता हूँ उससे कह सकता हूँ कि मैं उनसे सहमत नहीं हूँ।”¹²

जैनेन्द्र के आत्मकथात्मक वक्तव्य में प्रतिभा का महत्व नये रूप में उद्घाटित हुआ है : “मैं जो आज हूँ सो होने की कभी कल्पना न की थी। कुछ किताबें मेरे नाम से छपी हैं और लेखक समझा जाता हूँ। यह लेखक बनने तक का मेरा सपना भी नहीं था। छुटपन में लिखने का मैं बड़ा चोर था। यह सवाल आते ही सुध-बुध सब गायब हो जाती थी। दिमाग काम करना छोड़ देता था। परीक्षा में लिखना पड़ा हो

सो बात दूसरी। उस वक्त तो सोच विचार के लिए मौका न रहता था। डर के मारे आंख मूंदकर कोई नाक की सीधा सीधा भागता चला जाए ठीक वैसी दशा होती थी। लेकिन जब सिर पर वैसा कोई भूत न हो तब लिखना क्यों और कैसे हो? एक बार कहा गया कि देश प्रेम पर निबन्ध लिखो। मानो सुनते ही देश और प्रेम दोनों एक साथ मुझमें खत्म हो गये, सारा होश ही फाख्ता हो गया।... किताबों में जिनके नाम देखता और कभी तस्वीरें भी देख पाता था तो मालूम होता था कि ये सब किसी अपर लोक के देव पुरुष हैं और यह ज्ञानी सामग्री लिख जाने का काम उस अपर लोक में ही सम्पन्न होने वाला कोई अलौकिक कर्म है।

निष्कर्ष

साहित्य के संदर्भ में सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रश्न जिसमें लेखक के निजी अनुभव से संबद्ध वक्तव्यों का प्रमुख स्थान है, साहित्य के हेतु से संबंधित है। प्राचीन भारतीय काव्य-शास्त्र में साहित्यिक हेतुओं की चर्चा करते समय प्रतिभा को विशेष महत्व दिया गया है। साहित्य-सृजन के लिए प्रतिभा की अनिवार्य तत्व के रूप में मान्यता लगभग निर्विवाद है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. मंथन, पृ० ३५
2. वही, पृ० ३६
3. मंथन, पृ० ४-५
4. (क) “पुस्तक में मैंने कहानी कोई लम्बी-चौड़ी नहीं कही है। कहानी सुनाना मेरा उद्देश्य ही नहीं है।” सुनीता, प्रस्तावना, पृ० ३
5. (ख) “दिल बस्तगी की कहानी चाहिए तो हटिए मुझे न सताइए।” सोच-विचार, पृ० ४६
6. इतस्ततः, पृ० ६६
7. “सर्जनशील लेखक के रूप में जैनेन्द्र पिछले वर्षों में अधिकाधिक चुकते गये हैं और उनका नीतिकार और उपदेशक का रूप ही अधिक उभरकर सामने आता गया है।” अधूरे साक्षात्कार, नेमिचन्द्र जैन, पृ० १०३
8. “जैनेन्द्र का विचारक रूप उनके कथाकार रूप से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। वरन् वही उनका सत्य यथार्थ रूप है”, समय और हम, उपोद्घात (वीरेन्द्र कुमार गुप्त), पृ० ६
9. पूर्वोदय प्रकाशन (मासिक) वर्ष १ दिनांक ७ फरवरी १६७२, अंक ३-४, पृ.३
10. समय और हम, पृ० ६
11. मन्थन, प० ६२
12. “मुझे वे दार्शनिक से अधिक कलाकार, अधिक मनुष्य लगते हैं।” राम चन्द्र तिवारी, समसामयिक हिन्दी साहित्य; उपलब्धियां, पृ० १६१
13. मन्थन, पृ० ७८
14. काम, प्रेम और परिवार, पृ० २४